लेखांक १ : भूमि अधिग्रहण का महाभारत

- राहुल बैस

"सुई के अग्रनोंक इतनी भी जमीन नहीं दुंगा"

हम भारतीय जब कभी जमीन बटवारें संबंधी विवाद करते हैं, महाभारत की कथा और उसमें के दुर्योधन का यह 'धांसू डायलाग' हमें अनायस ही याद आ जाता है।

भारत सरकारने भूमि अधिग्रहण कानून, २०१३; में संशोधन प्रस्तावित किया तो इसके समर्थन और विरोध में महाभारत कथा जैसी शिष्ठाई चलने लगी है। कथित बाजारभाव से दोगुना या चारगुना प्रस्तावित मुआवजा के ऐवज में विकास और राष्ट्रहित के नाम पर जमीन देना चाहिये या नहीं देना चाहिये इसका विवाद उलझने लगा है।

खेती के लिए सिंचाई सुविधा उपलब्ध करानी हो तो बिजलीघर बनाने हेतू खेती की ही जमीन अधिग्रहण करनी होगी, यह भूमि अधिग्रहण कानून में निहित विरोधाभास है। इस तरह के विरोधाभासों के परे जाकर भूमि का मानवी जीवन में स्थान एवं महत्त्व समग्रता में समझने का इस लेखन का प्रयास है। हमारें जनमानस में रचे-बसे महाभारत कथा के रूपक से भूमि का मानवी जीवन में स्थान एवं महत्त्व समझना शायद आसान होगा।

महाभारत का समय और था। उस समय जमीन के स्वामित्व को लेकर कौरव और पांडवों में लढ़ाई थी। बेचारे पांडव! हस्तिनापूर का सम्राज्य छोड केवल पांच गाव पर राज करने में भी राजी थे। ... और द्रौपदी! उसका क्या? उसे भला भूमि की क्या लालसा! और ऐसी लालसा हो भी तो उस समय के सामाजिक परिवेश में एक स्त्री को भूमि स्वामित्व में स्थान मिलना नहीं था। पति को जो कुछ मिले उसीमें समाधान मानकर उसने जीना था। जमीन के बटवारें का समझौता नहीं हो सका तो युद्ध हुआ। कौरव हारे मारे गये। पांडव भूमि के स्वामि बने। लेकिन कहानी यहां खत्म नहीं हुई।

समय के साथ महाभारत की कहानी भारत देश में आगे बढ़ी। इस नयी कहानी में अब पाचों पांडव भूमि के अधिपत्य को लेकर आपस में भिड़े हैं। अपनी ओर जमीन का अधिक से अधिक हिस्सा चाहते हैं। उसके लिए एकदुसरे से जमीन की छीनाझपटी कर रहे हैं। और द्रौपदी? वह इन पाचों की जमीन में अपना हिस्सा और स्वतंत्र स्थान चाहती है। क्या है यह पाच पांडव और द्रौपदी?

जिनके आधार पर आधुनिक मनुष्य अथवा किसी राष्ट्र का जीवन चलता हैं ऐसे पाच अत्यावश्यक घटक के रूप में हम यहां पांडवों का रूपक समझ कर लेंगे। वे पाच घटक हैं - १) हवाईअड्डा, रेल्वे स्टेशन, रास्ते, पाठशाला, खेल का मैदान, तरणताल, अस्पताल, सीवेज प्लॅट, आदि नागरी सुविधाओं सहित बस्ती; २) नदी, नाले, तालाब, कुआ, आदि जलनिकाय; ३) खेती; ४) कारखाने, खदान, आदि उद्योग; एवं ५) जंगल।

इन पाचों घटकों की सामायिक विशेषता यह हैं कि इनमें से हरएक को भरपूर जमीन चाहिये होती है। जमीन के बिना हम इनका अस्तित्व सोच भी नहीं सकते। मनुष्य जीवन में इनका महत्त्व समान रूप से मुल्यवान हैं। शुद्ध हवा, पानी और अनाज बिना मनुष्य जीवन संभव नहीं। इसके लिए जंगल, जलनिकाय और खेती अत्यावश्यक हैं। लेकिन आधुनिक मनुष्य बिजली, प्लास्टिक, फौलाद, आदि खदान-कारखाने निर्मीत वस्तूओं के बिना भी नहीं रह सकता। घर-बस्ती बिना प्रकृति निर्मीत गुफाओं में रहना अब उसके लिए सर्वथा असंभव है।

भारत देश के करीबन सवा सौ करोड लोगों के लिए पर्याप्त मात्रा में अनाज, पानी, शुद्ध पर्यावरण, बस्ती, एवं औद्योगिक उत्पाद के लिए कितनी जमीन की आवश्यकता रहेगी इसका कोई सोचविचार ना करते हुये हम भूमि अधिग्रहण की छीनाझपटी में उलझ गये हैं। विशेषतः बस्ती और उद्योगों के लिए जंगल, पानी, और खेती की जमीन सकुचाते चले जा रहे हैं।

भूमि विवाद से जुड़ी एक उलझन सामाजिक है। आजीविका के विभिन्न साधनों के विकास के साथ हमारें समाज ने जाति, लिंग, लडाकूपन, आदि आधार पर विषमता का गुत्थमगुत्था ताना-बाना रचा। सभी जाति वर्ग की स्त्रिया एवं विशिष्ट जातियां तथा जनजातियों के लोगों को भूमि के स्वामित्व या उसके लाभ से वंचित रखा। समाज की सेवा दायित्व के बोझ तले दबाये रखा। स्वाधीन भारत में हमने जिस संविधान को स्वीकृत किया उसमें इस ऐतिहासिक अन्याय का निवारण करना हमारा परम दायित्व बताया गया है। इस तबके ने भी अपनी गुलाम मानसिकता को त्याग कर अपनेआप को 'मनुष्य' समझना शुरू किया है। हमारें संविधान से परिपोषित यह तबका अब अपने न्याय्य अधिकार का दावा कर रहा है। इसिलिए आधुनिक भारत के दकियानुसी सामाजिक मानसिकता में यह एक नयी उलझन है, जिसे जल्दी सुलझा लेना जरूरी है।

यह वंचित, हाशिये पर ढकेला गया सामाजिक तबका महाभारत के द्रौपदी का प्रतिक है। यहीं वह रूपक है जिसमें हम कह सकते है कि आधुनिक काल में द्रौपदी पांडवों से भिड़ी है और उन पाचों के हिस्से की जमीन में अपना भी स्वतंत्र हिस्सा चाहती है। उसे यह हक मिलना ही चाहिये।

पुराने महाभारत में युद्ध टाला नहीं जा सका। लेकिन आज जमिनी समझदारी दिखायी तो आगामी आपसी युद्ध और उसकी विनाशकता टाली जा सकती है। अतः भूमि का मान्वी जीवन में स्थान एवं महत्त्व तथा हमारें सामाजिक दायित्व के समग्र परिप्रेक्ष्य में भूमि अधिग्रहण को समझ लेना ही राष्ट्रहित में होगा। अन्यथा भूमि संबंधी यह तुकड़ो में सोच, औद्योगिक और बस्ती विकास की अमर्यादित लालसा कहीं हमारें जीवन का ग्रहण ना करले!

लेखक 'स्वराज्य मित्र सामाजिक संस्था' के माध्यम से विदर्भ में कार्यरत सामाजिक कार्यकर्ता है।

पता :- राहुल बैस, स्थान एवं पोस्ट अंजनगावबारी, व्हाया बडनेरा, तहसिल एवं जिला अमरावती, (महाराष्ट्र), पिन - ४४४७०१. ईमेल :- rahulbais@gmail.com दूरभाष क्रमांक :- ०९४२३१०२९८३

लेखांक २ : भूमि स्वामित्व का अधिग्रहण

- राहुल बैस

हमारें देश में पुराने जमाने से एक कहावत चली आ रही है - “विना गोरसं को रसो भूपतिनाम् ” भूमि (राज्य) बिना राजा को महत्त्व कहां!

राजा-महाराजाओं की बात क्या करें! भूमि बिना सामान्य व्यक्तियों का भी भला क्या महत्त्व रह जाता हैं? उनका कोई सम्मान? इसीलिए इस कहावत में हम ‘भूपतिनाम्’ की जगह ‘व्यक्तिनाम्’ कह दे तो शायद ज्यादा उचित होगा।

मनुष्य प्राणी बड़ा विचित्र है। उसे रहने के लिए अपनी जगह, अपना घर चाहिये, लेकिन उसमें अपने आराध्य देवता के लिए भी छोटा सा क्यों न हो, स्थान चाहिये होता है। समुदाय में वह आराध्य देवता के लिए बड़ा सा घर (मंदिर, मस्जीद, पूजाघर) बना लेता है। सारे विश्व का जिसे वह स्वामि मानता है, उस परमेश्वर के लिये अपने द्वारा बनाये गये पूजाघर पर स्वामित्व के लिए वह लढ़ लेता है। रहने के लिए विशालकाय महल हो तो भी उसमें अपने लिए एक कमरा ढुंढता है। कमरा ना हो तो किसी एक कोने पर, किसी कपाट पर अपना स्वामित्व जताता है। घर के जो सदस्य इस तरह घर में अपना स्थान पाने में असफल रहते हैं, वे तो मानो घरदार रहते हुये बेघर हो जाते हैं। फिर सचमूच के बेघर लोग भला कैसे जीते होंगे?

भारत की जनगणना, २०११ अनुसार खुले में तंबू गाड़े बड़े पाईप के गोल में समाये, उडान पुलिया या सिढ़ीयों के नीचे बस्तान बसायें, पूजाघर-रेल्वेस्टेशन-बसस्टैंड-फुटपाथ, आदि सार्वजनिक जगह पर निवास करते उन १७,७३,००० बेघर व्यक्तियों की हमने गणना करली, इतना ही उनका महत्त्व हैं। निवास के लिये अपनी कह सके ऐसी भूमि के अभाव में इनका जीवन हमारें लिये शायद इतना ही मायने रखता है कि हम इन्हें हमारें शहर की सुंदरता में बदनुमा दाग मानते है। इनमें से कुछ लोग किसी मंहगी-आलीशान कार के नीचे कुचले गये तो उससे विकलांग होनेवाले या मरनेवालों के परिजनों की अपेक्षा कारवाले के जेल जाने की चिंता हमें अधिक परेशान करती हैं।

या फिर भारत के १.५ करोड से अधिक ग्रामीण भूमिहीन खेतीहर मजदूर परिवार की सामाजिक-आर्थिक बदहाली का हम स्मरण करलें। इनके पास रहने के लिए घर तो है, लेकिन ग्रामीण आजीविका में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानेवाली कृषिजमीन नहीं हैं। इसी वजह से उनका सामाजिक-आर्थिक स्तर सबसे नीचले पायदान पर पहूंच जाता है। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण ६१वां दौर के अनुसार मध्यम से अतिभूधारक (२ हेक्टर या अधिक) किसानों का गरिबी अनुपात ९.८ होता हैं; जबकि अत्यल्पभूधारक (०.०१ से ०.४० हेक्टर) एवं भूमिहीन किसानों का गरिबी अनुपात क्रमशः २०.२ एवं २२ होता हैं।

भारत की जाति आधारित विषम सामाजिक परिवेश गरिबी अनुपात में अहम भूमिका निभाती है। कथित उच्च जाति के ग्रामीण खेतीहर मजदुरों के १६.१ गरिबी अनुपात की तुलना में दलित, मुस्लिम एवं आदिवासी मजदुरों का क्रमशः ३०.९, ३१.५ एवं ३९.५ का गरिबी अनुपात भूमिस्वामित्व से जुडी सामाजिक-आर्थिक विषमता स्पष्ट कर देता है।

हमारें सामाजिक-आर्थिक विषमता के संदर्भ में लिंगभेद का अग्रस्थान निर्विवाद है। इसकी वजह से एक दुष्टचक्र पनपता है जिसमें महिलाओं को भूमिस्वामित्व में स्थान नहीं दिया जाता और भूमिस्वामित्व नहीं होने से महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिती और बिकट हो जाती हैं। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण, २०११ के अनुसार भारत में केवल ९ प्रतिशत ग्रामीण महिलायें भूमिस्वामि हैं, जबकि ७९ प्रतिशत ग्रामीण महिलायें खेतीहर मजदूर के रूप में अपना योगदान दे रही हैं।

भूमि केवल स्थावर संपत्ति नहीं, संपत्ति निर्माण के लिए वह एक अवश्यंभावी घटक भी है। खेती, उद्योग-व्यवसाय, आदि आजीविका के उपक्रम भूमि के आधार पर ही पुरे किये जा सकते हैं। किसी के पास भूमि का स्वामित्व होना या नहीं होना उसके आजीविका तथा संपत्ति निर्माण की क्षमता को तय करता है।

भारत में भूमिस्वामित्व की प्राप्त एवं व्याप्त परिस्थिती हमारें संविधान के मुल अवधारणा को ठेस पहुंचा रही है। हमारें संविधान की उद्देशिका अनुसार अपने समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय; एवं प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए हम दृढसंकल्प हैं। इसीलिए हमने 'संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, १९७८' द्वारा संविधान में संशोधन किया। संपत्ति के अधिकार को मिला हुआ 'मौलिक अधिकार' का पूर्ववर्ती दर्जा हटाया और उसे साधारण 'संवैधानिक अधिकार' मान लिया गया, जिसे कानूनी प्रक्रिया द्वारा वंचित किया जा सकता है। महाराष्ट्र राज्य बनाम चंद्रभान टाले प्रकरण में ७ जुलाई १९८३ (एआयआर ८०३) को निर्णय देते हुये माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस संविधान संशोधन की जरूरत विशद की है।

भूदान कानून, सिलींग कानून, खेतीहर मजदूर कुल कानून इत्यादि द्वारा कृषि भूमि स्वामित्व के न्याय बंटवारें का प्राविधान हमने किया। लेकिन भूमि स्वामित्व की स्थिती सुधरते नहीं दिख रही। ६५ साल बाद भी हम अपने संवैधानिक संकल्प से कोसो दूर नजर आ रहे हैं।

अब भूमि अधिग्रहण कानून द्वारा हमें किसी को भूमि संपत्ति से वंचित करने का अधिकार मिला हैं तो हम उसका कैसे इस्तेमाल करने वाले हैं? बेघरों को घर दिलाने के नाम पर बिल्डरों की संपत्ति बढ़ायेंगे, उद्योगों के नाम पर किसानों की संपत्ति घटायेंगे, या फिर महिलायें, दलित, आदिवासी समेत सभी को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय; एवं प्रतिष्ठा और अवसर की समता दिलाते हुये भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न समाजवादी लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनायेंगे!

लेखक 'स्वराज्य मित्र सामाजिक संस्था' के माध्यम से विदर्भ में कार्यरत सामाजिक कार्यकर्ता है।

पता :- राहुल बैस, स्थान एवं पोस्ट अंजनगावबारी, व्हाया बडनेरा, तहसिल एवं जिला अमरावती, (महाराष्ट्र), पिन - ४४४७०१. ईमेल :- rahulbais@gmail.com दूरभाष क्रमांक :- ०९४२३१०२९८३

लेखांक ३ : सार्वजनिक प्रन्यास सिद्धांत का अधिग्रहण

- राहुल बैस

"सबै भूमि गोपाल की!" यह भारत का मानस है। गोपाल शब्द परमेश्वर वाचक है। यह शब्द भूमि एवं गाय, आदि प्राणियों के पालनकर्ता का भी बोध कराता है। पालनकर्ता के पास उपभोग के अधिकार लगभग विलुप्त हो जाते है। देखभाल का दायित्व ही पालनकर्ता का अधिकार होता है।

ईशावास्योपनिषद के ऋषि अनुसार - इस जगत् में जो कुछ भी है उस सब पर ईश्वर की सत्ता है। अतः किसी अन्य के धन की अपेक्षा ना करते हुये हमने इस जगत् का त्यागपूर्ण भोग लेना चाहिये।

हमारा दर्शनशास्त्र समस्त भूमि स्वामि एवं सत्ताधिशों के लिए जिम्मेदारी के साथ उपभोग का अधिकार बताता है।

अपनी सुविधा के लिए दर्शनशास्त्र और व्यवहार में हम हमेशा भेद करते आये हैं। दर्शनशास्त्र से विपरीत व्यवहार रखना मानो हमारी खासियत बन गई हैं। लेकिन हमारें लोकतांत्रिक गणराज्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग न्यायपालिका और उसके मुल सिद्धांतों का अस्वीकार करना शायद हमें संभव नहीं होगा।

स्वाधीन भारत में हमने अपनी न्यायव्यवस्था एवं उसका शास्त्र सदूर इंग्लंड की परंपराओं से स्वीकारा है। उसमें 'सार्वजनिक प्रन्यास सिद्धांत' (पब्लिक ट्रस्ट डाक्ट्रिन) का प्रचलन है। इसके अनुसार सारे प्राकृतिक संसाधनों के लिए सरकार विश्वस्त (ट्रस्टी) है। ताजी हवा, समुद्री तट, बहता पानी, घना जंगल, मनोरम पहाडीयां, आदि समस्त प्राकृतिक संसाधन मुलतः लोगों के लाभ, उपयोग एवं उपभोग के लिए हैं। विश्वस्त होने के नाते सरकार पर यह वैधानिक जिम्मेदारी है कि वह इन प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करें, एवं यह सुनिश्चित करें की इनका उपयोग सार्वजनिक हो। इसका निजीकरण एवं व्यावसायिक मुनाफाखोरी में परिवर्तित करना सर्वथा गैर तथा अमान्य है। देश की समस्त जनता तथा भावी पिढी की ओर से यह सिद्धांत सरकारी तंत्र एवं प्रशासन को मर्यादा और कर्तव्य याद दिलाता है।

प्राध्यापक जोसेफ एल. स्याक्स का उत्कृष्ट लेख 'दि पब्लिक ट्रस्ट डाक्ट्रिन इन नैचुरल रिसोर्सेस लाः इफेक्टिव ज्युडिशियल इंटरवेन्शन' (१९७०), हमारें न्यायशास्त्र में गौरवान्वित है। यह लेख निर्देशित करता है कि लोगों के अधिकार, संसाधनों का संरक्षण एवं प्रबंधन, परिस्थितिक मूल्य (इकालाजिकल वैल्यूज), आदि के संरक्षण के लिए विधि में ज्ञात सभी सिद्धांतों की अपेक्षा सार्वजनिक प्रन्यास सिद्धांत सबसे अच्छा व्यावहारिक एवं दार्शनिक आधार और कानूनी-साधन का गठन करता है।

भारत के उच्चतम न्यायालय ने विविध न्यायदान प्रक्रिया में बारबार सार्वजनिक प्रन्यास सिद्धांत के तहत पर्यावरण, परिस्थिति विज्ञान (इकोलोजी) एवं प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षण प्रदान किया हैं। एम.सी. मेहता बनाम कमलनाथ, १९९७ (१ एसएससी ३८८) प्रकरण में न्यायदान करते हुये उच्चतम न्यायालय ने इसी सिद्धांत अनुसार मार्गदर्शक तत्व जारी किये जो अब भारतीय न्यायप्रक्रिया में मील का पत्थर माने जाते है।

उच्चतम न्यायालय मानता है कि इस तेजी से बदलते आधुनिक एवं जटिल समाज की जरूरतों को पुरी करने के लिए कई बार सार्वजनिक भूमि पर अतिक्रमण आवश्यक हो जाता है। ऐसी स्थिती में संसद अथवा राज्य विधिमंडल द्वारा पारित कानून के परिप्रेक्ष्य में न्यायदान किया जायेगा। लेकिन ऐसे हर कानून की सार्वजनिक प्रन्यास सिद्धांत के अंतर्गत कडी समीक्षा करके उसकी संवैधानिकता तोलने का सर्वाधिकार उच्चतम न्यायालय के पास सुरक्षित है।

केवल सरकार को कर्तव्यबोध कराने तक सार्वजनिक प्रन्यास सिद्धांत की व्याप्ति सीमित नहीं। यह सिद्धांत भारत के एक-एक व्यक्ति, विशेषतः भूमि स्वामियों पर भी उतना ही लागू होता है। उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि हवा, पानी या भूमि और उससे संबंधित परितंत्र (ईकोसिस्टम) पर अधिकार स्थापित करने वाले हर व्यक्ति की जिम्मेदारी एवं आद्यकर्तव्य है कि यह संसाधन भावी पिढी तथा अन्य व्यक्तियों के जीवनयापन उपलब्धता हेतू दीर्घकाल सुरक्षित रहें।

भूमि स्वामि या पट्टेदार अथवा जल इस्तेमाल का अधिकार प्राप्त व्यक्तियों ने इन संसाधनों का इस तरह उपयोग करना चाहिये कि यह संसाधन घटे या ख़राब ना होने पाये ताकि अन्य लोगों के लिए इनकी दीर्घकाल उपयोगिता बनी रहे।

हमारें संविधान की धारा ५१क में नागरिकों के लिए प्रयुक्त मूल कर्तव्य सार्वजनिक प्रन्यास सिद्धांत की भावना पर्याप्त व्यक्त करते हैं।

सरकार के साथ नागरिकों में भी भावी पिढी तथा अन्य लोगों के जीवनयापन प्रति कर्तव्यबोध कराना अब अत्यावश्यक हो गया है, जबकि भूमि स्वामित्व संबंधी हमारी स्पष्टता और प्रखर हो गई हैं। थ्रिसीअम्मा जेकब तथा अन्य बनाम खनिज एवं भूविज्ञान विभाग, केरल राज्य, ८ जुलाई २०१३, (सिव्हिल अपील ४५४०-४५४८/२०००) प्रकरण में उच्चतम न्यायालय ने यह निःसंदिग्ध निर्णय दिया है कि भूमि के नीचे की खनिज संपत्ति का स्वामित्व सरकार का नहीं है। किसी कानूनी प्रक्रिया से यदि वंचित नहीं किया गया हो तो खनिज संपत्ति का अधिकार भूमि स्वामि का है। संबंधित कानून द्वारा खनिकर्म का नियमन सरकारने करना है। और जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने बारबार दुहराया है, यह नियमन भावी पिढी तथा सभी लोगों के जीवनयापन को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

सरकार तथा नागरिकों ने 'गोपाल' बनना, भूमि का 'त्यागपूर्ण भोग करना', अथवा 'सार्वजनिक प्रन्यास सिद्धांत' स्वीकारते हुये व्यवहार करना, यदि भूमि अधिग्रहण कानून में समाविष्ट ना हो तो इस देश में या पृथ्वी पर भावी पिढी के लिए क्या कुछ शेष बचेगा? अब हमें यह तय करना हैं कि मानव जाति समेत सारे प्राकृतिक संसाधनों का हम सर्वनाश करेंगे या संवर्धन करेंगे!

लेखक 'स्वराज्य मित्र सामाजिक संस्था' के माध्यम से विदर्भ में कार्यरत सामाजिक कार्यकर्ता है।

पता :- राहुल बैस, स्थान एवं पोस्ट अंजनगावबारी, व्हाया बडनेरा, तहसिल एवं जिला अमरावती, (महाराष्ट्र), पिन - ४४४७०१. ईमेल :- rahulbais@gmail.com दूरभाष क्रमांक :- ०९४२३१०२९८३

लेखांक ४ : प्राकृतिक संसाधनों का अधिग्रहण

- राहुल बैस

"प्राकृतिक संसाधन केवल औद्योगिक विकास के उत्पादक घटक नहीं। कृषि उत्पादन, जिसपर देश की खाद्यसुरक्षा निर्भर होती है, उसके लिए भी प्राकृतिक संसाधन महत्वपूर्ण घटक हैं। प्राकृतिक संसाधनों की कमी का दीर्घकालीन सीधा असर पर्यावरण का चिरस्थायित्व एवं नागरिकों की आजीविका बने रहने पर पडता हैं।" राष्ट्र के प्रति चिंतित यह दार्शनिक विचार भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (सीएजी) द्वारा एक प्रतिवेदन मसौदा में व्यक्त हुए है।

सन २००१ से २०१२ दौरान ओडिशा राज्य में २९,७६९.४८२ एकड़ निजी कृषि भूमि का अधिग्रहण किया गया था। यह निजी कृषि जमीन और १६,९६३.४१२ एकड़ सरकारी जमीन कूल १०६ उद्योगों को आवंटित करनी थी। इसमें से १,९१४.९२१ एकड़ भूमि औद्योगिक क्षेत्र में सार्वजनिक उपयोग के लिए आरक्षित रखी गई, एवं १,८९४.५७१ एकड़ भूमि का कोई आवंटन नहीं हुआ।

ओडिशा औद्योगिक अवसंरचना विकास निगम (आयडीसीओ) द्वारा औद्योगिक प्रयोजन के लिए इस भूमि अधिग्रहण एवं आवंटन की उपलब्धि लेखापरीक्षण सीएजी ने किया था। सार्वजनिक प्रयोजन एवं आपातकालीन प्राविधान के लिए भूमि अधिग्रहण का सरासर गलत इस्तेमाल, मुआवजा का अनुचित आंकलन, खेती-सिंचाई-पर्यावरण पर विपरीत परिणामों को नज़रअंदाज करके उद्योगों के प्रवर्तकों द्वारा चयनित भूमि का अधिग्रहण, आवंटित भूमि का गैरइस्तेमाल या अनुपयोग, अनेकानेक अनियमिततायें एवं खामियों से यह भूमि अधिग्रहण व्यवहार भरा पडा हैं।

दरअसल ओडिशा राज्य सरकारने औद्योगिक नीति निर्धारण, २००१ के तहत 'भूमि बैंक योजना' प्रोत्साहित की है। इस योजना के अंतर्गत राजस्व विभाग की ओर से औद्योगिक क्षेत्र के लिए आवंटन योग्य सरकारी जमीन की शिनाख्त कर ली जाती है, जिसे ओडिशा औद्योगिक अवसंरचना विकास निगम को हस्तांतरित किया जाता है। सन २०१० से २०१३ दौरान राज्य के ३० में से २९ जिलों में ४.३४ लाख एकड़ जमीन की शिनाख्त राजस्व विभाग ने की थी जिसमें से केवल १८२.७१ (०.०४ प्रतिशत) एकड़ जमीन निगम को हस्तांतरित की गई। भूमि बैंक द्वारा प्रचूर भूमि उपलब्ध रहते हुये भी भूमि अधिग्रहण की यह भूख प्रदेश की २९,७६९.४८२ एकड़ कृषि जमीन को निगल गई। यह अधिग्रहण करते समय संबंधित कृषि विभाग से कोई मशविरा भी नहीं किया गया।

औद्योगिक नीति निर्धारण, २००१ के अनुसार निजी भूमि का अधिग्रहण करते समय दोहरी फसल वाले सिंचित कृषि भूमि का अधिग्रहण टालने का हरसंभव प्रयास करना चाहिए। परंतु यहां ३ उद्योगों को आवंटित सिंचित क्षेत्र भूमि में २,३०४.८४ एकड़ सिंचन क्षमता का नुकसान हो गया।

खदान, बिजलीघर, जैसे औद्योगिक निकायों के लिए भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय से अनापत्ति मंजुरी लेना जरूरी होता है। औद्योगिक क्षेत्र की ३३ प्रतिशत भूमि पर 'हरित पट्टा' (वन) निर्मिती इसमें एक प्रमुख शर्त होती है। आवंटित भूमि के हकदार २९ में से सिर्फ २ उद्योगों ने यह शर्त पुरी की हुई सीएजी ने पाया। दो औद्योगिक क्षेत्रोंमें अनुमानित रूपये १,२९७.३५ करोड कीमत की २५९.४७१ एकड़ वनभूमि बिना मंजुरी के १३९ औद्योगिक इकाईयों को आवंटित कर दी गई थी।

सन २००१ से २०१२ दौरान ओडिशा राज्य सरकार ने समझौता ज्ञापन किये ८९ उद्योगों को ८६,७३२.६८ एकड़ भूमि आवंटन का वादा किया था। लेकिन वादे के मुताबिक इस अवधि में केवल २ उद्योगों को १०० प्रतिशत भूमि आवंटित हो सकी। २२ उद्योगों को ५० प्रतिशत भूमि आवंटित हुई। २८ उद्योगों को ५० प्रतिशत से कम भूमि आवंटित हुई। ३७ उद्योग भूमि-आवंटन का इंतज़ार करते रह गये।

स्थान परिवर्तन, अधिग्रहण में रूकावटें-देरी, न्यायप्रविष्ठ प्रकरण, वन मंत्रालय की मंजुरी, स्थानिक लोगों का विरोध, आदि कारणों से यह न्यूनता आयी। मार्च २०१३ तक २७ उद्योगों ने अंशतः और २ उद्योगों ने अपने पूर्ण क्षमता का उत्पादन शुरू किया। राज्य का औद्योगिक विकास हो गया!

भारत देश में भूमि अधिग्रहण से इस तरह का औद्योगिक विकास साधने वाला ओडिशा इकलौता राज्य नहीं है। अन्य राज्यों के लिए सीएजी की रिपोर्ट ज्यादा भिन्न नहीं होंगी।

हैरानी और परेशानी होती है कि हमारी सरकारें राज्य के प्राकृतिक संसाधनों को दाव पर लगा कर यह कैसा विकास साधना चाहती है? प्राकृतिक संसाधनों के साथ विकास का कोई प्रतिमान हम क्यों नहीं खडा कर पाते?

राष्ट्रीय वन नीति, १९८८ के तहत ३३ प्रतिशत भूमि पर वन की आवश्यकता हम मानते हैं। खाद्यसुरक्षा के लिए कृषि क्षेत्र को बनाये रखना हमारी मजबुरी हैं। लेकिन वन तथा कृषि बहुल क्षेत्र का 'सकल घरेलू सूचकांक' (ग्रास डोमेस्टिक इन्डेक्स - जीडीआय) हमेशा निन्म होता है यह जानकर हम भूमि अधिग्रहण की राह थामे औद्योगिक विकास से उंचा जीडीआय साधना चाहते हैं। इसीमें से हम ओडिशा जैसी 'दुर्घटना' को जन्म देते है, या फिर महाराष्ट्र जैसी विषमता - जहां गडचिरोली जिले पर वन संवर्धन का दायित्व देकर उसे गरिबी में ढकेला जाता है और मुंबई-पुणे-नासिक को औद्योगिक क्षेत्र से लबालब बेहतर जीडीआय का अवसर मिलता हैं।

इस तरह बेतरतीब भूमि अधिग्रहण से बेहतर होगा कि हम अपनी अर्थव्यवस्था में जरूरी बदलाव करके वन तथा कृषि बहुल क्षेत्र को भी ऊंचे जीडीआय का लाभ दिलाये। साथ ही हम अपने वैज्ञानिक प्रतिभा को आवाहन करें कि न्यूनतम भूमि इस्तेमाल में औद्योगिक इकाईयां स्थापित हो सके। तभी ३३ प्रतिशत वन भूमि, पर्याप्त जल निकाय, उद्योग, एवं कृषि के साथ भारत देश के सभी गाव-बस्तियों में समता स्थापित होगी।

लेखक 'स्वराज्य मित्र सामाजिक संस्था' के माध्यम से विदर्भ में कार्यरत सामाजिक कार्यकर्ता है।

पता :- राहुल बैस, स्थान एवं पोस्ट अंजनगावबारी, व्हाया बडनेरा, तहसिल एवं जिला अमरावती, (महाराष्ट्र), पिन - ४४४७०१. ईमेल :- rahulbais@gmail.com दूरभाष क्रमांक :- ०९४२३१०२९८३

लेखांक ५ : पुनर्वास और पुनर्स्थापना का अधिग्रहण

- राहुल बैस

हमें खेदपूर्वक स्वीकार करना होगा कि भारत यह विस्थापन की त्रासदी का देश है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के शरणार्थी संबंधी उच्च आयोग (युएनएचसीआर) के अंतर्गत स्थापित कार्यकारी समूह द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार भारत में स्वाधीनता से सन २०११ तक अनुमानतः ६ से ६.५ करोड लोगों को विकास परियोजनाओं के प्रभाव में विस्थापित होना पडा हैं। विश्व के किसी भी देश में यह अपने किस्म का सबसे बड़ा विस्थापन है। इन विस्थापितों में ४० प्रतिशत लोग आदिवासी हैं; तथा ४० प्रतिशत लोग दलित एवं अन्य सामाजिक वर्ग के ग्रामीण हैं।

स्वाधीनता के वक्त सांप्रदायिक दंगों से उपजी विस्थापन की त्रासदी हमें सहन करनी पडी। उससे उभर कर आधुनिक भारत निर्माण के लिए विकास परियोजनाओं के काम में हमने अपनी शक्ति झोंकी। अनेकों शहर, अनेकों लोग इससे लाभान्वित हुये दिखाई देते हैं। लेकिन इसका हर्जाना आदिवासी, दलित, ग्रामीण समुदायों को बेवजह भुगतना पडा हैं। आजीविका, आर्थिकता, सांस्कृतिक, सामाजिकता, पर्यावरण, आदि के अभ्यस्त भूमि से बिछडकर यह विस्थापित लोग कौनसे विकास की राह पर जीवनयापन करते हैं?

हमारें राजनेता जहां विकास परियोजना का श्रेय लेने से नहीं चुकते, वहीं विस्थापितों के पुनर्वास एवं पुनर्स्थापना संबंधी श्रेय लेते नहीं दिखाई देते। सरकारी तंत्र में परियोजना-दर-परियोजना विस्थापितों के आकड़े मिल जाते हैं। लेकिन विस्थापन के बाद की लोगों की बदहाल जिंदगी पर प्रकाश डालते अधिकृत रिपोर्ट नहीं मिलते। इस संबंध में गिने-चुने ही अकादमिक शोधपत्र उपलब्ध हैं।

अखिल बी. ओटा, 'रिकन्स्ट्रक्टिंग लाइलिहूड आफ दि डिस्प्लेस्ड फैमिलीज् इन डेवलपमेंट प्रोजेक्टस् काजेस् आफ फेल्युअर एण्ड रूम फार रिकन्सट्रक्शन, २००१; इस शोधपत्र में ओरिसा के नवरंगपूर जिले में उर्ध्व इंद्रावती सिंचाई एवं पनबिजली बहुउद्देशीय परियोजना से विस्थापित करीबन ५,५३४ परिवारों की विस्थापन से पहले की तुलना में विस्थापन के बाद की जिंदगी समझने का प्रयास हुआ है। भूमिधारण, सार्वजनिक संपत्ति संसाधन अभिगम, स्वास्थ्य सेवा अभिगम - मृत्यूदर एवं रूग्णता, सामाजिक विलगता, खाद्य सुरक्षा की स्थिती, रोज़गार के अवसर, घर स्वामित्व, शिक्षा तक पहुंच, अधिकारिक उपेक्षा की स्थिती, आय का स्तर, एवं क्रेडिट उपलब्धता संबंधी सूचकों में शोधकर्ता ने भारी न्यूनता पायी।

एक अन्य अध्ययन के अनुसार विस्थापन के बाद अधिकांशतः यह विस्थापित अच्छी आजीविका की तलाश में निकटतम शहर में बसना पसंद करते हैं। शहर की सुंदर कालोनियों से सटे झुग्गीयों में इनकी बस्ती होती हैं। उनके अपने शैक्षिक स्तर के अनुरूप रिक्षा चलाना, हमाली करना, निर्माण काम में मजदुरी करना, जैसे निन्म आयस्तर की आजीविका में यह लोग संलग्न हो जाते हैं।

भूमि अधिग्रहण कानून में अधिग्रहित भूमि अथवा संपत्ति के मुआवजे का तथा पुनर्वास और पुनर्स्थापना योजना बनाने का प्राविधान है। लेकिन यह प्राविधान कुछ मूल खामियों की वजह से अपर्याप्त अथवा निष्फल हो जाता हैं।

मुआवज़ा की राशि तय करना तथा प्रदान करने में होनेवाली धांदलीयों की ओर सीएजी के प्रतिवेदन ध्यान आकर्षित करते आये हैं। जो भी राशि उपलब्ध हुई हो वह वित्तीय साक्षरता के अभाव में विस्थापितों द्वारा गलत निवेश की जाती हैं। अतः विस्थापित लोग बहुधा संपत्तिविहीन अत्याधिक गरिबी की ओर ढकेले जाते हैं। अनेकों सामाजिक प्रभाव अध्ययनों ने इसकी गंभीरता विशद की हैं। सरदार सरोवर परियोजना के समय में बहुचर्चित 'भूमि के ऐवज में भूमि' की पुनर्वास और पुनर्स्थापना योजना अपने अव्यवहारिकता की वजह से विलुप्त हो गई। ऐसे में निवास योग्य कालोनियां बसाने तक ही पुनर्वास और पुनर्स्थापना सीमित हो गया है। आदिवासीयों में भूमि अथवा संपत्ति धारण का अधिकृत पट्टा अधिकांशतः उपलब्ध नहीं होता। ऐसे में वे लोग मुआवज़ा एवं पुनर्वास और पुनर्स्थापना योजना से पुरी तरह वंचित रह जाते हैं।

शहरी नौकरीपेशा या व्यवसायिकों के विपरीत साधारणतः आदिवासी एवं ग्रामीणों की आजीविका किसी एक साधन पर निर्भर ना होकर, अनेक साधनों पर आश्रित, बड़ी जटिल होती। उनके आजीविका के अनेक साधनों में से किसी एक साधन पर हलकासा बाहरी प्रहार भी उनके आयस्तर को बुरी तरह प्रभावित कर देता हैं। इसीलिए भूमि/संपत्ति का अधिकृत पट्टाधारक प्रत्यक्ष विस्थापितों तक हमने सीमित रहना उचित नहीं। परियोजना प्रभावित लोगोंकी हमारी समझ बढ़ानी होगी एवं उन्हें भी पुनर्वास और पुनर्स्थापना योजना में समाविष्ट करना जरूरी हो गया है।

भूमि अधिग्रहण से प्रभावित यह विस्थापन 'राजनैतिक आपदा' है। इसके लिए पुनर्वास और पुनर्स्थापना हेतू राजनैतिक हल ही खोजना होगा। भारतीय परंपरा में इसके उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं।

ऐसे राजनैतिक हल का एक वर्णन सामुदायिक जल प्रबंधन विशेषज्ञ श्री मनीष राजनकर ने शोधपत्र 'भंडारा : अच्छी किसानी का भंडार, (२००७)' में किया है। महाराष्ट्र के भंडारा-गोंदिया क्षेत्र का सबसे बड़ा तालाब बनाने के लिए जो जगह चुनी गई थी, वहा बस्ती थी। इस बस्ती की पुनर्स्थापना तालाब के नीचे नया गांव बसाकर तथा तालाब से सिंचित भूमि देकर की गई। 'नया गाव' शब्द अपभ्रष्ट होकर यह तालाब 'नवेगांव-बांध' कहलाया।

'विस्थापित एवं आजीविका प्रभावितों को परियोजना का सर्वाधिक लाभ' यह हमारी पुनर्वास नीति रही है। 'पुरानी स्थिती से बेहतर स्थिती में स्थापित करना' यह पुनर्वास और पुनर्स्थापना की विश्वमान्य संकल्पना है। क्या हम ऐसे पुनर्वास और पुनर्स्थापना युक्त भूमि अधिग्रहण की राजनैतिक इच्छाशक्ति रखते हैं?

लेखक 'स्वराज्य मित्र सामाजिक संस्था' के माध्यम से विदर्भ में कार्यरत सामाजिक कार्यकर्ता है।

पता :- राहुल बैस, स्थान एवं पोस्ट अंजनगावबारी, व्हाया बडनेरा, तहसिल एवं जिला अमरावती, (महाराष्ट्र), पिन - ४४४७०१. ईमेल :- rahulbais@gmail.com दूरभाष क्रमांक :- ०९४२३१०२९८३